अध्याय 5
सिंचाई एवं जल निकास
(Irrigation & Drainage)

सिंचाई का महत्व एवं स्रोत

कहा गया है– "जल ही जीवन हैं।" "जल बिन सब सून।" पेड़–पौधों में लगभग 84 से 99 प्रतिशत जल पाया जाता हैं। जल पौधों के लिए एक प्रमुख तत्व हैं, जिसके बिना पौधे की कोई भी शरीर क्रियात्मक क्रिया सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं हो सकती हैं। पौधे अपना भोजन घोल रूप में प्राप्त करते हैं, जिसके लिए मृदा में जल का होना अतिआवश्यक हैं। पौधों को जल कृत्रिम व प्राकृतिक साधनों से प्राप्त होता हैं। वर्षा के अभाव में कृत्रिम रूप से दिया जाने वाला जल सिंचाई कहलाता हैं।

सिंचाई की आवश्यकता हम सरल भाषा में समझ सकते हैं कि जीव–जन्तु को जब प्यास लगती हैं, तब वह जल–स्रोत के पास पहुँचकर, अपनी प्यास बुझा लेता हैं, परन्तु जब पेड़–पौधों को प्यास लगती है, तब वह स्वयं स्रोत के पास चलकर नहीं जा सकता। चूँकि उसकी जड़ें बेड़ी रूपी मिट्टी से जकड़ी होती हैं। अतः पौधा अपने आसपास न होकर के जल को ग्रहण कर लेता हैं, परन्तु जब आसपास, उसकी क्षमता से दूर जल होता है या वर्षा नहीं होती हैं, तब जल के अभाव में खड़ा–खड़ा प्राण त्याग देता हैं, अर्थात् सूख जाता हैं। ऐसी परिस्थिति में सिंचाई आवश्यक हो जाती हैं।

परिभाषा –

फसलों को उगाने के लिए कृत्रिम रूप से दिया गया जल, सिंचन कहलाता हैं।

अथवा

वर्षा के अभाव में भूमि को कृत्रिम तरीकों से जल पिलाने की क्रिया को सिंचाई करना कहा जाता हैं।

अथवा

फसलों की उचित वृद्धि के लिए मृदा के अन्दर उचित मात्रा में नमी बनाये रखने के लिए कृत्रिम जल देने की क्रिया को सिंचाई कहते हैं।

सिंचाई का महत्व (Importance of irrigation)

फसलों की वृद्धि एवं विकास हेतु सिंचाई का निम्नलिखित महत्व है –

1. पौधों का सम्पूर्ण विकास जल पर निर्भर करता है।
2. जल, जीवद्रव्य का एक मुख्य अवयव हैं, अतः कोशिका विभाजन के लिए जल की आवश्यकता होती है।
3. पौधों के प्रत्येक भाग में स्फीति (Turgidity) बनाये रखने के लिए जल एक अहम भूमिका निभाता हैं और यह कोशिकाओं को स्फीति प्रदान करता है, जिससे गुहिकाएँ फूल जाती हैं। कोशिकाओं के तापमान पर नियन्त्रण रहता हैं, जिससे फसलें लू व पाले से बच जाती हैं।
4. जल, पौधों का अभिन्न अंग हैं। प्रकाश–संश्लेषण की महत्वपूर्ण क्रिया में जल, कार्बन–डाइ–ऑक्साइड के संयोग से प्रकाश की उपस्थिति में, पर्णहरित के माध्यम से शर्करा (कार्बोहाइड्रेट्स) का निर्माण करता हैं, जो कि पौधे के विभिन्न भागों में वितरित हो जाता है।
5. कर्षण क्रियाओं में सिंचाई जल सहायक होता हैं और इसके कारण फसलों की समय पर बुआई की जा सकती हैं।
6. जल लाभदायक जीवाणुओं की क्रियाशीलता को बढ़ाता हैं। हानिकारक कीट जैसे– दीमक आदि सिंचाई के जल के प्रभाव से अपना असर कम दिखाते हैं।
7. जल की पूर्ति बढ़ाकर फसलों के परिपक्वता काल को कुछ लम्बी अवधि तक बढ़ाया जा सकता हैं, जिससे कि फसलों की गुणवत्ता पूर्ण अधिक उपज प्राप्त कर एवं बाजार की माँग के अनुसार काटकर बाजार में बेचा जा सकता है।
8. खेत के सिंचित होने पर मृदा में नमी रहेगी, जो बीजों के अंकुरण व पौधों की वृद्धिके लिए अत्यन्त आवश्यक है।
9. पेड़–पौधे अपने पोषक तत्वों को मृदा से घोल के रूप में लेते हैं, जिसके लिए सिंचाई करना आवश्यक हैं।
10. सिंचाई द्वारा वर्षा की अनिश्चितता से सुरक्षा की जा सकती हैं। जब वर्षा न हो अथवा असमय से हो तो फसलों को सिंचाई करके पानी दिया जाता है।
11. वाष्पोत्सर्जन पौधों के लिए एक आवश्यक एवं अनिवार्य प्रक्रिया हैं। पौधों की पत्तियों के द्वारा पर्ण रन्ध्रों के माध्यम से पानी उत्सर्जित किया जाता है। पानी की अनुपस्थिति में यह क्रिया पूर्णतया असम्भव ही है और वाष्पोत्सर्जन के अभाव में पौधो की जल एवं पोषक तत्व अवशोषण क्रियाएँ प्रभावित होती हैं।

12. मरूस्थल के प्रसार को रोकने में मदद मिलती है क्योंकि सिंचित क्षेत्र में वानस्पतिक आच्छादन हो जाता है जिससे मृदा क्षरण कम होता है।

13. खाद एवं उर्वरकों को ठोस से द्रव रूप में बदलने के लिए जल की आवश्यकता होती है।

14. मृदा में अपक्षालन द्वारा लवणीय प्रभाव को सिंचाई से कम किया जाता है।

सिंचाई के स्रोत (Source of irrigation)

सर्वप्रथम यह बताना जरूरी है कि सिंचाई के स्रोत व साधनों में अन्तर क्या हैं ? सिंचाई के स्रोत वे स्थान हैं, जहाँ पर जल एकत्रित रहता हैं, जिन्हें जल भण्डार भी कहते है। जैसे – कुआँ, नहरे, तालाब, बावड़ी, झील, झरने, सीवर, नदियाँ आदि। सिंचाई के साधन वे यंत्र हैं, जिनकी सहायता से सिंचाई के लिए जल–भण्डारों से जल लिया जाता है। जैसे – रहट, ढेकली, चरस, बेडी, पवनचक्की, पम्पसैट, बरमा आदि।

सिंचाई के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं –

(1) नहरें (Canals) – नदियों पर बांध बनाकर नहरें निकाली जाती हैं, फिर इनके जल का सिंचाई हेतु उपयोग किया जाता हैं। बाँध तथा नहरों के निर्माण में काफी पूंजी तथा समय की आवश्यकता होती हैं।

नहरों के प्रकार –

(i) अनित्यवाही नहरें (Seasonal canals) – इन्हें बरसाती नहरें भी कहते हैं। नदियों के जल की बाढ़ को कम करने के लिए अथवा रोकने के लिए, ये नहरें बनाई जाती हैं। जिनका पानी सिंचाई के काम आता हैं। नदियों में जलस्तर एक निश्चित ऊँचाई से ऊपर जाने लगता हैं, तो पानी को इन नहरों में छोड़ दिया जाता हैं। इन नहरों के मुख्य रूप से दो दोष हैं। प्रथम जब नदी में पानी नीचे रह जाता हैं तो नहर में पानी नहीं जाता है और नहरें सूख जाती हैं। दूसरा इन नहरों से पूरे वर्ष सिंचाई नहीं होती है। अतः इन नहरों का बनवाना अधिक लाभदायक नहीं रहता है। इसलिए अब इस प्रकार की नहरें कम बनवायी जाती हैं। इस प्रकार की नहरों का उदाहरण भारत में कृष्णा, कावेरी, डेल्टा क्षेत्रों में है।

(ii) नित्यवाही नहरें – इन्हें बारहमासी नहरें भी कहते हैं क्योंकि इनमें पूरे वर्ष पानी बहता रहता हैं और ये पूरे वर्ष सिंचाई के काम आती हैं। ये नहरें हमेशा बहने वाली नदियों से निकाली जाती हैं अथवा नदियों पर बाँध बनाकर निकाली जाती हैं। उदाहरण – इन्दिरा गांधी नहर । राजस्थान में गंगानगर, हनुमानगढ़, बीकानेर, जैसलमेर, कोटा, बूंदी आदि जिलों में नहर सिचांई का मुख्य स्रोत हैं। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह द्वारा बनवाई गई गंगनहर राजस्थान ही नहीं देश की भी प्राचीनतम नहर प्रणालियों में से एक हैं जिससे वर्तमान में भी सिंचाई की जा रही है।

(2) तालाब (Tanks)– तालाब किसी का व्यक्तिगत नहीं होता है। प्रायः एक गांव का एक तालाब होता हैं जो गांव के निचले भाग में स्वतः बन जाता हैं। इसमें पूरे गांव एवं आसपास से वर्षा का पानी आकर एकत्रित होता हैं।जहाँ धरातल कुएँ खोदने के लायक नहीं हैं। इस कारण तालाबों की आवश्यकता होती हैं। राजस्थान में भीलवाड़ा, टोंक आदि क्षेत्रों में तालाब सिंचाई के अच्छे स्रोत हैं।

(3) कुएँ (Wells)– कुओं के माध्यम से सिंचाई परम्परागत रूप से की जाती रही है। कुओं द्वारा सिंचाई में अधिक व्यय एवं परिश्रम की आवश्यकता होती हैं। राजस्थान में सिंचाई का सबसे प्रमुख स्रोत कुएँ हैं।

कुओं के प्रकार –

1. अस्थाई कुआँ – जिन क्षेत्रों में भूमि का जल स्तर ऊँचा होता है तथा किसान निर्धन होता है। उन क्षेत्रों में अस्थाई कुआँ बनाया जाता है। इसकी गहराई 15 से 20 फीट तक होती है और यह एक या दो वर्ष ही काम आते हैं।

2. स्थाई कुआँ – ये दो प्रकार के होते हैं –

(i) कच्चा कुआँ – जिन क्षेत्रों में मिट्टी कठोर होती हैं अथवा चट्टानें होती हैं, उन क्षेत्रों में इस प्रकार का कुआँ बनाया जाता है।

(ii) पक्का कुआँ – इस प्रकार के कुए की खुदाई भी वैसे ही की जाती है, जिस प्रकार से कच्चे कुएँ की होती है लेकिन अन्तर यह होता है कि यह कुआ अन्दर से पक्का होता हैं अर्थात यह ईट या पत्थर से बना होता है। गहराई 25 फीट से अधिक होती है।

3. पाताल तोड़ कुआँ (Artisan wells)– ये अधिकतर उत्तरांचल राज्य के तराई क्षेत्रों में मिलते हैं। पाताल तोड़ कुओं में भूमिगत जल स्वतः अपने ही दबाव से धरातल पर बाहर निकलता है। इन कुओं के लिए विशेष भूगर्भिक सरंचना की आवश्यकता होती है।

4. नलकूप (Tubewell) – भूमि की अधिक गहराई से पानी प्राप्त करने के लिए मशीनों की सहायता से अधिक गहराई (120 मीटर से 150 मीटर तक या इससे अधिक) तक लोहे के मजबूत पाइप डालकर पानी प्राप्त किया जाता है। ट्यूबवैल से पानी सब मर्सिबलपम्प द्वारा निकाला जाता है।

5. झीलें – पृथ्वी तल पर कहीं–कहीं प्राकृतिक कारणों से निचले क्षेत्र में जल एकत्रित हो जाता है। उस स्थान विशेष को झील कहते हैं।

झील दो प्रकार की होती हैं – 1. मीठे पानी की 2. खारे पानी की

6. झरने (Cascade) – वर्षा के दिनों में पहाडों पर पानी एकत्रित हो जाता हैं। यह पानी धीरे–धीरे पहाड़ों की दरारों एवं कन्दराओं में रिसता रहता है यह पानी झरनों का रूप ले लेता है।

कुछ झरने बारहमासी होते हैं जबकि कुछ झरनें गर्मी के मौसम में सूख जाते हैं।

7. बावड़ी – ये छोटे जलाशय होते है जिन्हें बदियां भी कहते है। जिस प्रकार से कुएँ होते हैं, उसी प्रकार ये बावड़ी भी होती हैं। ये चौकोर आकार की अन्दर से पक्की होती हैं। जिनमें अन्दर से पानी आने के स्रोत होते हैं। ये कुएँ की भांति गोल न होकर चौकोर होती हैं और आकार में बड़ी होती हैं जिनमें काफी गहराई तक सीढ़िया बनी होती हैं जिनकी सहायता से ऊपर–नीचे आया–जाया जा सकता हैं।

बावड़ी उन स्थानों में अधिक बनाई जाती हैं जहाँ 20 इंच से कम वार्षिक वर्षा होती हैं। राजस्थान, शेखावटी क्षेत्र में बावड़ी का अधिक चलन रहा हैं। यह वर्षा के पानी को भी संग्रहित करने की परम्परागत विधि है।

सिंचाई के साधन (Means of irrigation) –

सिंचाई के साधन वे यन्त्र हैं जिनकी सहायता से सिंचाई के लिए जल–भण्डारों से लिया जाता हैं। भूमि के अन्दर एवं सतह पर उपलब्ध जल को सिंचाई के लिए खेत में उपयोग करने के लिए विभिन्न प्रकार के साधन अपनाये जाते हैं, जैसे– रहट, चरस, ढेकली, बेड़ी, पवनचक्की, पम्प सैट, बरमा आदि। इन्हें संचालित करने के लिए पशु–शक्ति, मानव–शक्ति, वायु–शक्ति एवं यांत्रिक शक्ति काम में लेते हैं।

अतः सिंचाई के पानी को जल स्रोतों से उठाने और उसे नियन्त्रित करने के लिए जल निकालने के उन्नत साधनों की आवश्यकता होती हैं। इस प्रकार की सिंचाई को जलोत्थान सिंचाई Lift irrigation कहते हैं।

सिंचाई के साधन निम्नलिखित हैं –

1. **चरस** – इसे क्षेत्रीय भाषा में मोट या पूर के नाम से भी जानते हैं। यह सिंचाई का प्राचीन साधन है। इस साधन से लगभग 30 फीट तक गहरे कुओं से आसानी से पानी निकाला जा सकता है। इससे 10 घण्टे में लगभग 60,000 लीटर पानी उठाया जा सकता है। यदि दो जोड़ी बैल काम में लेवे तो यह मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

चित्र–5.1 चरस

2. रहट (Persian Wheal) – सिंचाई का यह साधन भी पुराना हैं। रहट द्वारा 10 से 12 मीटर की गहराई तक का पानी उठाया जाता है। इसमें लोहे के बड़े पहिये पर छोटी–छोटी बाल्टियों की माला होती हैं। इसकी कुछ बाल्टियाँ पानी में डूबी रहती हैं। पहिये को एक धुरी द्वारा घुमाया जाता हैं।

चित्र–5.2 रहट

इसे चलने के लिए एक आदमी तथा एक जोड़ी बैल या ऊँट काम में लेते हैं। इससे प्रति घण्टा लगभग 10000 लीटर पानी उठाया जा सकता हैं।

3. बेड़ी (दोलन टोकरी) – यह भी सिंचाई का पुराना साधन है। इससे लगभग 1 मीटर ऊँचाई तक पानी उठाया जा सकता है। तालाब, नदी, झील, नहर आदि से पानी इसके द्वारा उठाते हैं। इसमें दो आदमियों की आवश्यकता पडती है। चमड़े की बनी टोकरी को दोनों ओर दो रस्सियों से बांध कर दो आदमी पानी उठाते हैं। इससे कम क्षेत्र की सिंचाई होती हैं। इससे प्रतिघण्टा 3600 से 5000 लीटर पानी निकाला जा सकता हैं।

चित्र–5.3 बेड़ी (दोलन टोकरी)

4. **ढेकली** – सिंचाई का यह साधन भी पुराना हैं। इससे कम गहरे कुओं व तालाबों का पानी उठाया जा सकता है। इसमें लकड़ी की बल्ली या लम्बा खम्भा जल स्रोत के पास भूमि सतह पर पर लगा होता है। इसके ऊपर लकड़ी की बल्ली काम में लेते हैं जिसके एक सिरे पर पत्थर बांधा जाता है तथा दूसरे सिरे पर रस्सी के द्वारा बाल्टी बंधी रहती है। जब पत्थर ऊपर उठता है। तब बाल्टी में पानी भर जाता है। इससे कम क्षेत्र की सिंचाई होती है। इससे 1 से 3 मीटर गहराई से पानी उठाया जा सकता है तथा एक घण्टे में 2000 से 2300 लीटर पानी निकाला जा सकता है।

5. **पवन चक्की** (Wind mill) – पवन चक्की में लोहे के बड़े पहिये पर चारों ओर ब्लेड लगे होते हैं। इस पहिये को काफी ऊँचे लोहे के टावर पर लगाया जाता हैं जो कि वायु की शक्ति से घूमता रहता है। लोहे की छड़ द्वारा घूमते पहिये की शक्ति को भूमि पर रखे प्लंजर पम्प तक पहुँचाया जाता हैं। पम्प का पानी उठाने वाला पाइप कुएँ के पानी में डूबा रहता हैं। पवन की गति से घूमते हुए इस पहिये की शक्ति द्वारा पम्प चलता रहता हैं। पम्प

चित्र–5.4 पवन चक्की

से पाइप द्वारा पानी बाहर निकलता है। पानी की मात्रा हवा की गति पर निर्भर रहती है। पवन चक्की को चलाने के लिये कम से कम 16 मील प्रति घण्टा वेग से पवन चलनी चाहिए। पवन चक्की ऐसे स्थान पर लगाई जानी चाहिए, जहाँ हवा में रूकावट न हो। इसे चलाने के लिये आदमी या बैलों की आवश्यकता नहीं पड़ती। वायु का चलना अति आवश्यक है।

6. **पम्प सैट** – आजकल कुंओं व नलकूपों से पानी निकालने के लिए डीजल इंजन पम्प, विद्युत मोटर पम्प व ट्रैक्टर काम में लिए जाते हैं। इनकी क्षमता अन्य साधनों से अधिक होती है। सबसे अधिक प्रचलन विकेन्द्रीय पम्प (Centrifugal Pump) का है। यह पम्प विकेन्द्रीय बल (Centrifugal Force) के सिद्धांत पर कार्य करता है। पम्प के बॉडी को केसिंग कहते हैं। इसके अन्दर पंखा होता है, जो कि साफ्ट्स के द्वारा तीव्र गति से इंजन या मोटर की शक्ति द्वारा चलता है। पम्प का पानी उठाने वाला चूषक नल (Suction pipe) पानी में डूबा रहता है। चूषक नल में नीचे की तरफ फुट वॉल्व लगा होता है, जो कि पानी को कुएँ में वापस बोरिंग पाइप के अन्दर जाने से रोकता है। इसके द्वारा पानी वापस कुएँ में नहीं जा सकता है। इस पाइप का पानी पंखे की सहायता से खींचा जाता है। बाद में यह प्रसार नल (Delivery pipe) से बाहर निकल जाता है। बनावट के आधार पर पम्प के प्रकार –

(1) मोनो ब्लॉक पम्प–इसमें पंखा व मोटर एक ही ब्लॉक में स्थित होते हैं।

(2) डबल ब्लॉक पम्प – इसमें चालक शक्ति का भाग अलग होता है तथा पंखे वाला भाग अलग होता है। इंजन पम्प प्रायः इसी प्रकार के होते हैं।

(3) सबमर्सिबल पम्प – यह पम्प पानी के अन्दर रहकर कार्य करता है।

इसलिये यह पम्प अधिक गहराई की जलस्तर वाली भूमि में प्रयोग में लाया जाता है। नलकूप में अधिकांश यही पम्प उपयोग में लाये जाते हैं।

चित्र–5.5 डीजल पम्प सेट

फसलों की जल माँग (Water Requirement of Crops)

जल माँग –

फसल की जल माँग जल की वह मात्रा है जो निश्चित परिस्थिति में निश्चित अवधि तक फसल की सामान्य वृद्धि एवं उत्पादन के लिये आवश्यक है तथा जिसकी पूर्ति जल अवक्षेपण या सिंचाई या दोनों द्वारा होती है। इसमें वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, पादप उपापचय में प्रयुक्त जल के अतिरिक्त वह जल भी सम्मिलित होता है जो भूमि की तैयारी, पौधरोपण, लवण निक्षालन तथा जल प्रयोग में होने वाली हानि जैसे रिसने, बहने आदि में प्रयुक्त होता है। पौधों की उपापचयी क्रिया (शरीर निर्माण) में कुल फसल जल माँग की 1 प्रतिशत से कम जल की मात्रा की आवश्यकता होती हैं अतः जल माँग को सूत्ररूप में निम्न प्रकार दिया जा सकता है –

जल माँग = वाष्पोत्सर्जन + वाष्पीकरण + सिंचाई में जल की हानि + विशेष प्रक्रियाओं में प्रयुक्त जल

जल माँग को इस प्रकार भी प्रदर्शित किया जा सकता हैं–

जल माँग = सिंचाई जल की आवश्यकता + प्रभावी वर्षा + मृदा में संग्रहित नमी का योगदान

सिंचाई जल की आवश्यकता = जल माँग – प्रभावी वर्षा – मृदा में संग्रहीत नमी का योगदान

जल माँग को प्रभावित करने वाले कारक

पौधों की जल माँग , भूमि की दशा, जलवायु, पौधों की प्रकृति व फसल प्रबन्धन द्वारा प्रभावित होती है। जल माँग को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं –

(अ) फसल की प्रकृति – जल माँग फसल व फसल की किस्म पर निर्भर करती हैं। उदाहरण के लिए ज्वार को कम पानी की आवश्यकता होती हैं जबकि धान व गन्ना की जल माँग अधिक हैं। एक ही फसल की विभिन्न किस्मों की जल माँग अधिक हैं। एक ही फसल की विभिन्न किस्मों की जल माँग भिन्न–भिन्न होती हैं। दीर्घ अवधि की किस्म की जल माँग मध्यम व कम अवधि की किस्म की तुलना में अधिक होती हैं। फसल के लिए उपभोग में प्रयुक्त जल की मात्रा पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में कम, पौधों की बढ़वार के समय अधिक, फलावस्था में अधिकतम और परिपक्वता पर घटती हैं। अंकुरण के समय वाष्पीकरण से भूमि से जल का ह्रास अधिक होता है। जिन पौधों की जड़ें कम विकसित व उथली होती हैं वे कम पानी का अवशोषण कर पाती हैं। जड़ें जितनी गहराई तक जाती हैं उतने ही अधिक क्षेत्र से जल का शोषण करती हैं तथा उतने ही ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है। सूखा सहनशील फसलों को वृद्धि एवं विकास के लिए कम जल की आवश्यकता होती है। जिन फसलों में पत्तियाँ एवं शाखाएँ अधिक होती हैं, उनकी जल माँग कम पत्तियों वाली फसल की तुलना में अधिक होती है।

(ब) मृदा – मृदा की जल संग्रहित करने की क्षमता व पानी की उपलब्धता उसके भौतिक गुणों पर निर्भर करती है जैसे मृदा संरचना, मृदा रंग, मृदा ताप आदि। ये कारक किसी भी फसल की जल आवश्यकता को प्रभावित करते हैं।

1. हल्की बलुई मृदाओं की अतःस्पन्दन गति (Infiltration rate) अधिक होने के कारण भारी मटियार मृदाओं की अपेक्षा अधिक पानी की आवश्यकता होती है।
2. उथली मृदाओं को गहरी मृदाओं की तुलना में जल्दी–जल्दी लेकिन प्रति सिंचाई कम पानी की आवश्यकता होती है।
3. कार्बनिक पदार्थो की उपस्थिति से मृदा की जल अवशोषण क्षमता बढ़ जाती है तथा मृदा को कम पानी की आवश्यकता होती है।
4. मृदा उर्वरता भी पौधों द्वारा प्रयुक्त जल की मात्रा को प्रभावित करती है। कम उर्वर मृदाओं में उगाये गये पौधे या फसलें प्रति इकाई शुष्क पदार्थ उत्पन्न करने के लिए अधिक पानी वाष्पोत्सर्जित करती हैं। उर्वरक उपयोग से फसल का वाष्पोत्सर्जन अनुपात कम होता हैं तथा पानी के प्रभावी उपयोग में मदद मिलती हैं।
5. जिन भूमियों का रंग काला होता हैं वे वातावरण से अधिक ताप का अवशोषण करती हैं, जिससे भूमि से वाष्पीकरण अधिक होता हैं। जल माँग अधिक होगी।
6. जल निकास भी जल माँग को प्रभावित करता है। जलमग्न मृदाओं में वाष्पोत्सर्जन कम होने से पौधों द्वारा पानी का अवशोषण कम होता है। इसलिए दोषपूर्ण जल निकास परिस्थितियों में फसलें कम पानी लेती हैं।

(स) जलवायु – यह सर्वमान्य तथ्य हैं कि वाष्पीकरण –वाष्पोत्सर्जन सौर विकिरण, वायुमण्डल तापमान, सापेक्ष आर्द्रता तथा वायुगति से प्रभावित होता हैं। गर्मियों में बोई जाने वाली फसलों की जल माँग अधिक होती हैं क्योंकि गर्मियों में अधिक तापमान से वाष्पीकरण व वाष्पोत्सर्जन क्रियाएँ तेज हो जाती हैं। वातावरण में आर्द्रता कम होने पर वाष्पीकरण व वाष्पोत्सर्जन बढ़ जाता हैं। अतः फसल को अधिक पानी की आवश्यकता होती है। मध्यम व तेज हवाएँ चलने पर मृदा सतह से वाष्पीकरण बढ़ने के कारण मृदा में नमी कम हो जाती है तथा फसल में जल्दी ही सिंचाई करने के कारण जल माँग बढ़ जाती है। दिन के समय सूर्य जितना चमकीला होगा उतना ही वाष्पीकरण अधिक होगा। फसल के वृद्धि काल में बरसात होने पर फसल की जल माँग में कमी आती है।

(द) फसल प्रबन्धन – कर्षण क्रियाओं का फसल की जल माँग पर सीधा प्रभाव पड़ता है। अधिक जुताई करने पर मृदा संरचना में सुधार होता है। अतः जल माँग में कमी आती हैं। बीज दर बढ़ाने पर प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की संख्या बढ़ने से जल मांग में वृद्धि होती हैं। यदि फसल बुवाई वायु गति के विरूद्ध कतारों में करे तो वाष्पीकरण की क्रिया कम होगी व जल माँग भी कम होगी। निराई–गुड़ाई करने से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं जिससे खरपतवारों द्वारा वाष्पोत्सर्जन में व्यर्थ जल की बचत होती है। खेत में पलवार या अवरोध परत का प्रयोग (Mulch) का प्रयोग करने से जल माँग में कमी आती है। सिंचाई प्रबन्धन भी जल माँग को प्रभावित करता हैं। सिंचाई की प्रभावित करता हैं। सिंचाई की प्रवाहित सिंचाई विधि (Flood irrigation) में नाली सिंचाई विधि (Furrow irrigation) की तुलना में अधिक पानी की आवश्यकता होती हैं। प्रवाहित विधि की तुलना में क्यारी विधि से सिंचाई करने पर जल माँग कम होती हैं। जल स्रोत से खेत तक पानी ले जाने हेतु कच्ची नाली में अन्तःस्रवण (Percolation) और अपसरण (Seepage) द्वारा जल की हानि पक्की नालियों की अपेक्षा अधिक होती है। फसलों पर विभिन्न कीटों व रोगों के प्रकोप के कारण पौधों की वृद्धि रूक जाती है जिससे जल माँग बढ़ जाती हैं।

जल निकास (Drainage)

जिस प्रकार जल के अभाव में पौधों की वृद्धि एवं विकास कम हो जाता है ठीक उसी प्रकार आवश्यकता से अधिक जल पौधों की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव डालता हैं। मृदा में फालतू जल होने से रन्ध्रावकाशों में हवा की जगह पानी भर जाता है, जिससे हवा और जल का सन्तुलन नहीं रह पाता है। अतः खेत से अतिरिक्त पानी को बाहर निकालना अति–आवश्यक हो जाता है।

सिंचाई और जल निकास दोनों विपरीत क्रियाएँ हैं। सिंचाई से जल की आपूर्ति की जाती हैं जबकी जल–निकास से अतिरिक्त पानी बाहर निकाला जाता है।

परिभाषा – मृदा से अतिरिक्त पानी को कृत्रिम विधियों द्वारा बाहर निकालने की क्रिया को जल–निकास कहते हैं।

अथवा

मृदा की सतह अथवा अधोसतह से अनावश्यक जल को बाहर निकालना जल–निकास कहलाता है।

पौधों के जल माँग व वातन (वायु संचार) से अधिक जल की मात्रा को अतिरिक्त या अनावश्यक जल कहते है।

जल निकास की आवश्यकता क्यों ?

1. अधो–भूमि में सख्त तह का उपस्थित होना जिसके कारण पानी नीचे की सतहों में नहीं पहुँच पाता व ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाता है।
2. अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ पानी की जल निकासी छोटे–छोटे नाले या नालियों द्वारा सीमित हो जाती है।
3. चिकनी भूमियों जहाँ पर भूमि के द्वारा कम मात्रा में पानी अवशोषित किया जाता है और अधिक पानी की मात्रा ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाती है।
4. ऐसे क्षेत्रों में जहाँ पर भूमि में जल भूमि की ऊपरी सतहों में ही पाया जाता है।
5. लवणीय भूमियों में हानिकारक लवणों को खेत में हटाने के लिये, भूमिगत जल निकासी की आवश्यकता होती है।
6. नहरी क्षेत्रों में जहाँ किनारे के खेतों में पानी निस्पन्दन द्वारा एकत्रित हो जाता है।
7. जो भूमियाँ जल–क्षरण को प्रभावित होती हैं वहाँ पर कभी–कभी जल–क्षरण को कम करने के लिये जल निकास के रास्ते तैयार किये जाते हैं।
8. समतल भूमियों में कुछ फसलें पानी में 8–10 घण्टे रहने पर प्रतिकूल रूप में प्रभावित होती हैं, अतः ऐसी अवस्था में जल निकास आवश्यक है।
9. वे भूमियाँ जिनमें फालतु जल, शीघ्र नहीं निकाला जा सकता।
10. निचली समतल भूमियाँ।
11. तराई क्षेत्र की दलदली भूमियाँ।

खेती में जल उपयोग –

क्र.स.	खेत में जल की आवक	खेत में जल की जावक
1	वर्षा से (सभी खेतों में)	1. भूमि सतह से बहकर (रन ऑफ लोसेज)
2	सिंचाई से (केवल सिंचित खेतों में)	2. फसलों द्वारा उपभोग
3	सीपेज से (नदियों/कच्ची नहरों एवं बांध के किनारे के खेतों में या निचले क्षेत्र में)	3. भूमि में नीचे जाकर नष्ट
		4. वाष्पीकरण द्वारा नष्ट
		5. खरपतवारों द्वारा नष्ट
		6. स्रोत से खेत तक ले जाने में नष्ट
		7. सिंचाई विधि में खामी के कारण नष्ट
		8. सिंचाई प्रवृत्ति में खामी के कारण

जल निकास के लाभ

1. भूमि का वायु संचार बढ़ता हैं फलस्वरूप भूमि में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती हैं जिसके कारण भूमि में बीजों के अंकुरण, जड़ों द्वारा खाद्य तत्वों के अवशोषण पौधे के जड़ व तने की वृद्धि, पौधों के रोग एवं सूखा आदि सहन करने की क्षमता में वृद्धि होती है।
2. खेतों से जल निकास होने पर, अगली फसल के लिये खेत की तैयारी व बुआई समय पर हो जाती है।
3. हानिकारक लवण भूमि की ऊपरी सतह पर एकत्रित नहीं हो पाते हैं, अतः भूमि ऊसर नहीं हो पाती हैं।
4. जल–निकास का उचित प्रबन्ध होने से जल द्वारा मृदा कटाव में रूकावट पड़ जाती है।
5. जलमग्न भूमियों में अगर जल–निकास का उचित प्रबन्ध न हो तो कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती हैं और यह कार्बन–डाइ–ऑक्साइड पानी के साथ मिलकर कार्बनिक अम्ल बनाती रहती हैं। फलस्वरूप मृदा अम्लीय हो सकती हैं। अम्लीय भूमियों में एल्यूमिनियम व लोहे के लवणों की मात्रा आ जाती हैं जो फसल की बढ़वार के लिये हानिकारक होते हैं।
6. उचित जल–निकास होने पर भूमियों में अणुजीवियों की क्रियाशीलता बढ़ती है जो कि फसल वृद्धि के लिये अपरोक्ष रूप में लाभदायक होती है।
7. जल–निकास की सुविधा होने पर पौधों के खाद्य तत्त्वों का भूमि में निक्षालन की क्रिया द्वारा बहुत कम ह्रास होता है।
8. जल–निकास होने पर भूमि का तापक्रम भी अधिक नहीं गिर पाता जो फसलों की वृद्धि में सहायक होता है।
9. भूमि दलदली होने से बच जाती है।

भूमि में अतिरिक्त जल की हानियाँ –

1. मृदा से वायु संचार में बाधा आना।
2. हानिकारक लवणों का इकठ्ठा होना।
3. मृदा के ताप का कम होना।
4. लाभदायक जीवाणुओं की क्रियाशीलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
5. जड़ों का पूर्ण विकास न होना अर्थात् जड़ें कम गहराई तक जाती हैं।
6. भूमि का दलदल होना।
7. मृदा अपरदन होना।
8. भूपरिष्करण क्रियाओं में बाधा।
9. बीमारियों व हानिकारक कीटों का प्रकोप।

जल संरक्षण की आवश्यकता

जल समेट प्रबन्ध एक बहुआयामी कार्यक्रम हैं जिसके अन्तर्गत मृदा, जल, वनस्पति, मनुष्य व जानवरों का संर्वधन व विकास, मृदा अपरदन व गाद की रोकथाम, बाढ़ व सूखा नियन्त्रण,भूमि व भूमिगत जल में सुधार, घास चारा, ईंधन व फसलों की पैदावार में अनियमित आधार पर वृद्धि, पर्यावरण व पारिस्थितिकीय सुधार आदि कार्य आते हैं। साथ ही प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर आधारित कुटीर उद्योगों और धन्धों का विकास का स्थानीय जनता की आर्थिक दशा में सुधार करना भी इसका उद्देश्य है। इन सभी कार्यों में स्थानीय निवासियों का सक्रिय सहयोग वांछनीय है।

जल समेट प्रबन्ध कार्यक्रम के निम्नलिखित एक या अधिक उद्देश्य हो सकते हैं, जैसे –

– जलागम में त्वरित/अत्यधिक भू–क्षरण से रोकथाम,
– विश्वसनीय एवं स्वच्छ जल की आपूर्ति,
– बाढ. एवं सूखे का नियन्त्रण,
– फसल, चारा, ईंधन, फल आदि की लगातार आपूर्ति,
– विशेष समस्याओं , जैसे– भूस्खलन, खनिज क्षेत्र, नदी, नाला, कटाव आदि का नियन्त्रण।

जल संरक्षण

जल संरक्षण चाहे मृदा में हो या मृदा की सतह पर हो। आज के बदलते परिवेश में जल का संरक्षण करना अति आवश्यक हो जाता हैं।

जल का अभाव कई कारणों से होता हैं। जैसे – पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन, वाष्पीकरण द्वारा, पानी का अपवाह, वर्षा का अभाव, भूमि की जल सोखने एवं जल धारण क्षमता, वर्षा का वितरण, शैल की संरचना, तीव्र दोहन, जल–स्रोतों का अनुपयुक्त रख–रखाव आदि।

जल–संरक्षण की परिभाषाएँ –

भूमिगत अथवा भूमि की सतह पर जल–भण्डारों में जल की सुरक्षा करना ही जल संरक्षण कहलाता है।

अथवा

जल का सदुपयोग करना ही, जल संरक्षण कहलाता है।

अथवा

जल नष्ट होने से बचाना एवं आवश्यकता के समय फसलों को उपलब्ध करना ही, जल संरक्षण कहलाता है।

जल संग्रह (Water harvesting) –

परिभाषाएँ – "जल संग्रह की वह तकनीक है, जिसमें बहते हुए वर्षा जल को भूमि में या खेत के पोखर में खेती के उपयोग के लिए इकठ्ठा किया जाता है, वॉटर–हार्वेस्टिंग कहलाता है।"

अथवा

"महावट अथवा खरीफ ऋतु में प्राप्त वर्षा जल को बाह क्षेत्र से जल अपवाह में वृद्धि करके निचले स्थान पर निर्मित जलप्रद गड्ढे में एकत्रित कर लेना, जल–संग्रह कहलाता हैं।"

अथवा

"ढलान वाले क्षेत्र बनाकर और ढलान से होने वाले अपवाह पानी को इकट्ठा करके एवं संरक्षण करके जरूरत के समय, इसका उपयोग करना ही वाटर–हार्वेस्टिंग कहलाता है।"

वाटर–हार्वेस्टिंग की दो विधियों का वर्णन किया जा रहा है –

(1) लघु जल–संग्रह विधि – इस विधि में जल को भूमि में संग्रह किया जाता है। इसके भी दो तरीके हैं –

(अ) दो कतारो के बीच – इसमें खेत में डोलियाँ एवं नालियाँ बनाकर डोलियों पर फसलें उगाई जाती हैं और नालियों में जल संग्रह किया जाता है। यह तरीका उन क्षेत्रों में अपनाया जाता है, जहाँ वर्षा लगभग फसल के पानी की जरूरत के बराबर होती है। डोलियाँ एवं नालियाँ बनाने के लिए रीजर–सीडर यन्त्र का प्रयोग करना अच्छा रहता है।

इस विधि से बाजरा बाजरा, ग्वार, मूंग एवं लोबिया आदि फसलें ली जा सकती हैं।

(ब) दो प्लॉटों के बीच – इस तरीके में पूरे खेत में फसल न उगाकर खेत के कुछ भाग में ही फसल उगायी जाती है और शेष खेत में इस प्रकार ढलान दी जाती है कि वर्षा का पानी उस भाग से बहकर फसल वाले भाग में इकट्ठा हो जावे। यह विधि फसलों के पानी की जरूरत से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अपनायी जाती है। इस विधि द्वारा अनाज एवं दालवाली फसलों के अलावा बेलवाली सब्जियों एवं बारानी फलों की खेती की जा सकती है।

(2) वृहद जल संग्रह – इस विधि में जल को पोखर में एकत्र किया जाता हैं और उसे फसलों को सूखने से बचाने के लिए एवं पलेवा देने में उपयोग किया जाता है। शुष्क क्षेत्रों के लिए 10 x 10 x 2 मीटर के पोखर बनाये जाते हैं। ऐसे पानी से भरे पोखर से एक एकड़ भूमि में 5 सेमी. की एक सिंचाई की जा सकती है। इस प्रकार सिंचित फसलें असिंचित फसलों से 2–3 गुना अधिक पैदावार देती हैं।

स्थल पर मीठे जल के दो मुख्य प्राप्ति क्षेत्र हैं –

1. **भूमिगत (Under Ground)**
2. **धरातलीय (surface)**

धरातल के नीचे गहराई पर चट्टानों के कणों के मध्य रिक्त स्थान तथा दरारों में उपलब्ध जल के भूमिगत जल कहते हैं। धरातल पर उपलब्ध कुल जल का केवल 0.6 प्रतिशत भाग ही भूमिगत जल के रूप में संग्रहित है। वर्षा, नदियों, दलदलों, तालाबों, झीलों आदि के जल के रिसाव से भूमिगत जल–भण्डार (Aquifer) बनता हैं। रिसाव की मात्रा धरातल के ढाल तथा चट्टानों की संरचना पर निर्भर करती है। समतल भूमि या धीमे ढाल तथा रन्ध्रयुक्त शैलों में जल रिसाव अधिक होता है। इसके विपरीत तीव्र ढाल तथा अरन्ध्रयुक्त शैलों में बहाव अधिक होने से रिसाव कम होता है।

प्राचीनकाल से ही मानव भूमिगत जल की प्राप्ति कुओं के माध्यम से करता आ रहा हैं। आज भी हाथ से खोदे हुए कम गहरे कुओं से करोड़ों लोग पीने तथा अन्य उपयोगों के लिए पानी प्राप्त करते हैं।

"भूमिगत जल के ऊपरी तल को भूमिगत जल–स्तर कहते है।

भूमिगत जल तल से अधिक गहरा कुआँ खोदने पर उसमें भूमिगत जल–स्तर के स्तर तक पानी प्रकट हो जाता है। इन कम गहरे व हाथ से खोदे हुए साधारण कुओं द्वारा भूमिगत जल के ऊपरी भाग का ही दोहन हो पाता है। शुष्क मौसम में भूमिगत जल–स्तर नीचे गिर जाने पर कई छिछले कुएँ सूख जाते हैं। कुओं से जल अधिक मात्रा में खींचने पर भूमिगत जल तल उल्टे शंकु की भांति नीचे बैठ जाता है। इसे गर्तशंकु कहते (Cone of Depression) हैं।

शंकु उत्पन्न करने वाला मुख्य कुआँ ही नहीं बल्कि ऐसे शंकु की परिधि में आने वाले छिछले कुएँ भी सूख जाते हैं। आजकल तीव्र दर से बढ़ती जनसंख्या के लिए प्रत्यक्ष रूप से तो पानी की खपत बढ़ ही रही हैं, साथ ही अधिक कृषि उपजों की आवश्यकता के कारण तथा बढ़ती हुई औद्योगिक माँग के कारण भी जल की आवश्यकताएँ काफी बढ़ गई हैं। अतः विश्व के अनेक क्षेत्रों व देशों में कुओं को मशीनों की सहायता से गहरा खोदकर गहराई पर उपलब्ध विशाल भूमिगत जल–भण्डार का उपयोग किया जा रहा है। इन्हें नलकूप कहते हैं। इनसे न केवल विश्व की जनसंख्या के बहुत बड़े भाग को पीने का पानी, बल्कि सिंचाई तथा औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु काफी मात्रा में जल उपलब्ध कराया जाता हैं। प्राप्त किये जाने वाले जल की मात्रा के बराबर जल का पुनर्भरण अति आवश्यक है। ऐसा न होने पर गर्तशंकु निरन्तर विशाल तथा गहरे होते जाते हैं। यह स्थिति लम्बे समय तक बनी रहने पर जल–स्तर निरन्तर गिरता जाता है।

कुओं में जल पुनर्भरण करने के उपाय –

1. जलीय प्रचुरता वाले क्षेत्रों व मौसम में जल एकत्रण की सुविधाएँ जुटाकर अतिरिक्त जल को शुष्क क्षेत्रों तथा शुष्क मौसम में उपलब्ध करना। जैसे – एनीकट तथा बाँध बनाकर। उदाहरण – अजमेर जिले के चीताखेड़ा, जलग्रहण विकास क्षेत्र में एनीकट से कुओं का जलस्तर 2 फुट से 20 फुट तक बढ़ा है।
2. पारम्परिक जल स्रोतों का उपयुक्त रख–रखाव करना।
3. कुओं व नलकूपों के मध्य उपयुक्त दूरी बनाये रखना, ताकि वे पारस्परिक शंकुगर्त में नहीं आये।

4. प्रत्येक क्षेत्र में वर्षा के जल को छोटे–छोटे तालाबों में एकत्रित करना ताकि स्थानिक रूप से भूमिगत जलस्तर में वृद्धि होते–होते व्यापक क्षेत्र में भूमिगत जल का पुनर्भरण हो सके।

5. जल स्रोतों के दोहन की मात्रा पुनर्भरण की मात्रा तक सीमित रखना।

वर्षा जल संग्रहण हेतु निम्नलिखित उपक्रम स्थापित किया जा सकता है –

वर्षा के जल को संग्रह करना व आगे भविष्य में उपयोग में लेना एक वर्षो पुरानी तकनीक है। ऊँचे–ऊँचे किलों पर व रेगिस्तानों में टांकों में इसी जल को भविष्य के लिए संग्रहित किया जाता रहा है।

वर्षा जल को भूजल में पहुँचाने की विधि बहुत ही सरल है व इस उपक्रम को आसानी से कहीं भी बनाया जा सकता है, वह भी बिना किसी तोड़ फोड़ के छत के पानी को एक ही पाइप में संग्रहित करके फिल्टर के माध्यम से घरों/छतों में स्थित टयूबवैल या टैंक में डाला जाता है, अगर छत से पानी निकालने के तीन चार निकास (नाल्दे) हैं तो उन सबकों जोड़ कर एक पाइप में संग्रहित किया जाता है, फिर उसको फिल्टर से जोड़ा जाता है और फिल्टर के आगे पाइप लगाकर उसे टयूबवैल/हैण्डपम्प/कुओं से जोड़ा जा सकता है।

एक गणना के अनुसार यदि 1000 वर्ग फीट की छत या धरातल पर 1 से.मी. वर्षा होती हैं तो लगभग 1000 लीटर पानी एकत्रित होता है अर्थात् कही अगर 100 से.मी. अर्थात 40 इंच वर्षा होती है तो एक लाख लीटर शुद्ध जल भूजल में जायेगा।

इसमें होने वाले लाभ :–

- भू–जल में शुद्ध जल जायेगा।
- भू–जल की मात्रा निश्चित बढ़ेगी।
- भू–जल की गुणवत्ता बढ़ेगी।
- गली मोहल्ले के नाले वर्षा में बंद नहीं होंगे व घरो में पानी भरने जैसी स्थिति नहीं होगी।
- भू–जल स्तर बना रहने से टयूबवैलों/हैण्डपम्प में बराबर शुद्ध जल आता रहेगा।

जल संरक्षण की विभिन्न विधियाँ (Methods of water conservation)

समतलीकरण एवं मेड़बन्दी : उबड़–खाबड़ जमीन पर वर्षा जल का वितरण कहीं आवश्यकता से अधिक तो कहीं पर आवश्यकता से बहुत कम हो जाता है। खेत के समतलीकरण द्वारा वर्षाजल वितरण की इस असमानता को दूर किया जा सकता है। समतल सतह से जल का बहाव कम होने के कारण वर्षाजल भूमि में अधिक मात्रा में रिसता है व नमी गहराई तक बनी रहती है। खेत के चारों ओर मेड़ न होने से वर्षा जल अनियन्त्रित रूप से बहकर मृदा का अपरदन कर खेत में अवलानिकायें विकसित कर भूमि को खराब कर सकता है। अतः खेत को समतल कर चारों ओर न्यूनतम 50 सेमी से 60 सेमी ऊंची मेड़ बनाकर वर्षाजल, पोषक तत्व, खाद व बीज को बाहर जाने से रोका जा सकता है।

समोच्च बांध व वानस्पतिक अवरोध : अधिक ढलान के खेतों में समतलीकरण संभव नहीं होता है वहाँ ढलान के अभिलम्ब दिशा में मिट्टी के समोच्च अवरोध बनाकर वर्षा जल के बहाव व मृदा क्षरण को रोका जा सकता है। सामान्यतः दो समोच्च अवरोधों के मध्य 60–70 मीटर की दूरी रखी जाती है जो स्थानीय औसत वर्षा व ढलान पर निर्भर करती है। समोच्च अवरोध 0.75 से 1 मीटर ऊँचे व 1 से 1.5 मीटर चौड़े आधार के बनाये जा सकते हैं। इन अवरोधों को अधिक मजबूती प्रदान करने के लिये इन पर स्थानीय वनस्पति जैसे मूंजा, सेवन आदि लगाया जा सकता है।

समोच्च नाली : इस तकनीक के तहत अधिक ढलान वाले खेत या चारागाह में ढलान के अभिलम्ब दिशा में समोच्च नाली बनायी जाती हैं। नाली से निकाली गई मिट्टी ढलान की तरफ मेड़ के रूप में डाल दी जाती है। वर्षा होने पर सतही बहाव इस नाली में एकत्र हो जाता है जो पौधों को लगाने के लिये प्रारम्भिक अवस्था में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। ढलान की तरफ बनाई गई मेड़ बहते पानी के मार्ग में अवरोध का कार्य करती है। सामान्यतः नाली 0.75 से 1 मीटर व 0.60 से 0.75 मीटर चौड़ी बनाई जा सकती है। दो नालियों के मध्य 60 से 90 मीटर का अन्तराल पर्याप्त होता है। समोच्च नाली तकनीक विशेषतः ढलान वाले चरागाहों में वृक्ष व घास स्थापित करने में काफी सहायक होती है।

खेत में जल धारण क्षमता बढ़ाना : वर्षाकाल के दौरान बहाव के साथ तालाबों में चिकनी काली मिट्टी जमा हो जाती है। इस मिट्टी की जलधारण क्षमता बलुई मिट्टी की अपेक्षा ज्यादा होती है। गर्मियों में तालाबों के खाली होने के बाद इनकी काली मिट्टी को खेतों में बिछा देने से खेतों की बलुई मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ाई जा सकती है व पानी अधिक समय तक फसलों के उपयोग के लिये भूमि में उपलब्ध रहेगा।

खेत की जुताई : अच्छे जमाव, पौधों की बढ़वार तथा अधिकतम उपज के लिये खेत की जुताई एक आवश्यक कृषि कार्य है। खरीफ में आवश्यक से अधिक जुताई करने पर तेज हवाओं द्वारा मिट्टी एवं नमी ह्रास होता है अतः जुताई करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि तैयारी एवं बुआई के बीच कम समय अन्तराल हो। बुआई के लिये अच्छी तरह खेत तैयार करने के लिये स्वीप कल्टीवेटर द्वारा एक जुताई बरसात के समय तथा एक जुताई बुआई से पहले पर्याप्त होती है। जुताई हमेशा खेत के ढाल

के अभिलम्ब दिशा में करनी चाहिये। इससे मृदा क्षरण व जल के बहाव में कमी आती है।

पंक्तिदार बुआई : पंक्तिदार बुआई भूमि एवं जल संरक्षण के दृष्टिकोण से मरूक्षेत्र में बहुत ही उपयोगी है। अनुसंधान के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि यदि तिल की चार कतारों के साथ मोंठ की 6 कतारों को एकांतर क्रम में बोई जायें तो अधिकतम लाभ मिल सकता है। सेवण घास के साथ खरीफ में दलहनी फसलों (मूंग, मोठ, ग्वार) के पट्टीदार सस्यन से वायु द्वारा मृदा क्षरण को रोकने के साथ–साथ प्रति इकाई क्षेत्र से उपज भी अधिकतम प्राप्त होती है।

सतही पलवार : शुष्क क्षेत्रों में उच्च तापमान के द्वारा तीव्र वाष्पीकरण होता है जिससे मृदा में व्याप्त नमी का तेजी से ह्रास होता है व पौधे नमी के अभाव में सूखने लगते है। अतः संचित नमी को बचाये रखने के लिये खेत से निकाले गये खरपतवार व अन्य घास–फूस से सतह पर की गई पलवार मृदा के वातीय व जलीय क्षरण तथा मृदा नमी को बचाने में काफी सहायक होती है। सतही पलवार के रूप में उपलब्धता के आधार पर फसलों के अवशिष्ट अंश, पत्तियाँ, सूखी घासें, लकड़ी का बुरादा या पॉलिथीन की चादरें काम में ली जा सकती है।

उचित फसलों का चुनाव व समय पर बुआई : मरूस्थलीय क्षेत्रों में फसलोत्पादन पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर करता है अतः इन क्षेत्रों में फसलों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि फसलें ऐसी हो जो कम पानी व कम समय में तैयार हो जाये तथा इनमें सूखा सहन करने की क्षमता हो। मरूस्थलीय स्थानों में ऊपरी सतह पर मृदा जल की कमी होने के कारण ऐसे क्षेत्रों में गहरे जड़ों वाली फसलें ज्यादा उपयुक्त रहती है। फसलों की बुआई सही समय पर करनी चाहिये। ऐसा करने से फसलों की बढ़वार के लिये अनुकूल अवधि मिल जाती है और फसल के पकने के समय सूखे का सामना नहीं करना पड़ता है। रेतीली मिटि्टयों के लिये बाजरी, मूंग, मोठ, ग्वार आदि फसलें उपयुक्त रहती है। इन फसलों की किस्म विशेष का चुनाव भूमि व उपलब्ध जल आदि के आधार पर किया जा सकता है।

पौध संख्या एवं रक्षण : शुष्क क्षेत्रों में पानी की कमी के कारण पौधों की संख्या सिंचित कृषि की तुलना में 10 से 15 प्रतिशत कम रखी जाती हैं। यदि अधिक सूखे की स्थिति उत्पन्न हो रही हो तो पौधों की संख्या को ज्यादा पानी उपलब्ध रहेगा। पौध संख्या कम करने से घटी हुई पौध संख्या को ज्यादा पानी उपलब्ध रहेगा। पौध संख्या कम होने से उत्पादन में हुई कमी को कम पौधों को ज्यादा पानी उपलब्ध रहने से उत्पादन में हुई वृद्धि द्वारा पूरा किया जा सकता हैं। बुआई से पूर्व बीजोपचार किया जाना आवश्यक है। 2–3 वर्ष के अन्तराल पर जैविक खाद का प्रयोग भी फसल उत्पादन में काफी सहायक होता है।

खरपतवार निकालना : खरपतवार खेत में उपलब्ध जल व पोषक तत्वों को शीघ्रता से ग्रहण करते हैं, फलस्वरूप फसलों को आवश्यक पोषक तत्व व पानी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाते हैं। अतः फसलों को पर्याप्त नमी व पोषक तत्व उपलब्ध कराने हेतु समय पर खेत को खरपतवारों से मुक्त कर देना चाहिए। खरपतवार को उपयुक्त फसल चक्र अपनाते हुए खुरपी, कल्टीवेटर या खरपतवार नाशक दवाईयों का प्रयोग करके नियंत्रित किया जा सकता हैं। इस प्रकार मरू क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के सस्यन से अधिकतम उपज एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जल संरक्षण की ऊपर दी गई विधियों के सफल प्रयोग से खरीफ की फसलों की अच्छी उपज के साथ–साथ रबी की फसलों की बुआई के लिए भी नमी मृदा में संरक्षित रहती है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. पेड़–पौधों में औसत जल कितना पाया जाता है?
   (अ) 40 प्रतिशत (ब) 90 प्रतिशत
   (स) 60 प्रतिशत (द) 30 प्रतिशत

2. पौधो–में स्फीति कोशिका विभाजन प्रकाश संश्लेषण के लिये आवश्यक अवयव है :–
   (अ) मृदा (ब) खाद
   (स) जल (द) वायु

3.पौधों की पत्तियों के पर्ण रन्ध्रों के माध्यम से पानी के उत्सर्जित करने की प्रक्रिया को कहते है :–
   (अ) वाष्पीकरण (ब) वाष्पोर्त्सजन
   (स) अवशोषण (द) वृषण

4. जिन नहरों में हमेशा पानी बहता है, उन्हें कहते है :–
   (अ) अनित्यवाही (ब) नित्यवाही
   (स) एनिकट (द) झरने

5. ऐसा जल स्रोत जिसमें सीढ़ियाँ बनी होती हैं :–
   (अ) पक्का कुआँ (ब) कच्चा कुआँ
   (स) नलकूप (द) बावड़ी

6. अनावश्यक जल को खेत से निकासी की क्रिया को कहते हैः–
   (अ) जलमाँग (ब) जल निकास
   (स) जल संग्रह (द) जल प्लावन

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

7. नलकूप की औसत गइराई कितनी होती है ?
8. कुएँ कितने प्रकार के होते हैं ?
9. रहट का संचालन किस शक्ति के द्वारा होता है ?
10. जल माँग का सूत्र लिखिए ?
11. वह पम्प जो पानी के अन्दर रहकर कार्य करता है, क्या कहलाता है।
12. पहाड़ों की दरारों व कन्दराओं से रिसने वाला पानी का स्रोत क्या कहलाता है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

13. सिंचाई किसे कहते हैं ?
14. किन कृषण क्रियाओं के लिये जल आवश्यक है ?
15. भूमि में लाभदायक जीवाणु की क्रियाशीलता कैसे बढ़ती है?
16. सिंचाई के साधन किसे कहते हैं ?
17. पाताल तोड़ कुआँ कैसा होता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

18. सिंचाई की परिभाषा देते हुये, सिंचाई के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
19. सिंचाई के प्रमुख स्रोतों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
20. जलमाँग को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
21. जल निकास किसे कहते है ? जिल निकास का महत्त्व का वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला

(1) ब	(2) स	(3) ब
(4) ब	(5) द	(6) ब